खराब विचारों के जंगल में खो न जाएं

नेहा सिन्हा

क्षतिपूर्ति वनीकरण कोश के तहत काफी धनराशि एकत्र हो चुकी है। इसका इस्तेमाल वृक्षारोपण के ज़रिए कृत्रिम जंगलों का विकास करने की बजाय मौजूदा वनों को बहाल करने में किया जाना चाहिए। नेहा सिन्हा बॉम्बे नेचुरल हिस्ट्री सोसाइटी में कार्यरत हैं। यहां व्यक्त विचार उनके निजी विचार हैं। यह लेख पूर्व में दी हिंदू में प्रकाशित हुआ था।

संसद की लकड़ी की डेस्कों पर एक विधेयक दस्तक दे रहा है। यह विधेयक है क्षतिपूरक वनीकरण विधेयक जिसमें ऐसी व्यवस्था बनाने का प्रावधान किया जाएगा कि भारत भर में जंगलों का विकास किया जाए, उन्हें काटा जाए और दुबारा से उन्हें पुनर्जीवित किया जाए। यह इस बात की निगरानी करेगा कि जंगलों के विनाश से जो 38,000 करोड़ रुपए की राशि इकट्ठी की गई है, उसका इस्तेमाल कैसे किया जाए।

शुरुआत में मात्र क्षतिपूर्ति वनीकरण के लिए निर्धारित इस कोश में इतनी भारी-भरकम राशि के मद्देनज़र उच्चतम न्यायालय भी ऐसी योजना बनाने को तत्पर हुआ जिससे इसका न्यायसंगत और 'उचित' इस्तेमाल सुनिश्चित किया जा सके। प्रस्तावित विधेयक जिस पर विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी, पर्यावरण और वन सम्बंधी संसदीय स्थायी समिति विचार कर रही है, का मुख्य ज़ोर कृत्रिम प्लांटेशन के विकास के लिए राशि का इस्तेमाल सुनिश्चित करना है। साथ ही एक अन्य प्रावधान में इस राशि का इस्तेमाल 'बुनियादी ढांचे' के विकास पर करने की बात कही गई है। ये प्रावधान अपने आप में अप्रासंगिक नहीं हैं, लेकिन इसके बावजूद इस राशि का इस्तेमाल कृत्रिम उपायों, चाहे प्लांटेशन हों या इमारतें, के लिए खोलने से पहले इस व्यवस्था को पारिस्थितिकी के मानदंडों पर कसा जाना ज़रूरी है।

यहां सबसे पहले तो दो चुनौतियां हैं। क्षतिपूर्ति वनीकरण राशि को अनेक लोग 'खून से सना पैसा' मानते हैं, क्योंकि इसका सृजन मूल जंगलों को नष्ट करने से जुड़ा है। ऐसे में यह सवाल उठता है कि क्या इस धनराशि में विस्तार किया जाना चाहिए और क्या वनों के डायवर्शन (अन्य कार्यों में उपयोग) पर विराम नहीं लगना चाहिए? वैचारिक बातों से अलग एक सीधा-सा सवाल यही है कि क्या नए जंगलों के विकास के लिए हमारे पास ज़मीन है भी?

मात्र प्राकृतिक संसाधन नहीं

'क्षतिपूर्ति' के पीछे मान्यता अदला-बदली की हैः कि विकास परियोजनाओं के लिए पर्यावरण सम्बंधी सरोकारों की कुर्बानी देनी होगी। क्षतिपूर्ति वनीकरण भी इसी धारणा पर टिका है, लेकिन साथ ही इसमें यह भी मान लिया गया है कि नए जंगल आसानी से लगाए जा सकते हैं। यह उस अति प्राचीन धारणा का परिणाम है जिसमें जंगल को जैव विविधता का एक पूरा तंत्र नहीं बल्कि केवल लकड़ी, बांस और ऐसी ही चीज़ों का स्रोत माना जाता है। अगर जंगलों को केवल प्राकृतिक संसाधनों के स्रोत, और वह भी प्राकृतिक कम और संसाधन ज़्यादा, के रूप में देखा जाता है, तब तो क्षतिपूर्ति वनीकरण के विचार में कोई दिक्कत नहीं है। केंद्रीय पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्री प्रकाश जावडेकर के शब्दों में कहें तो फॉरेस्ट डायवर्शन को 'पुनर्वनीकरण' कहा जाना चाहिए। शायद इसीलिए विधेयक में कृत्रिम प्लांटेशन बनाने पर ज़ोर दिया गया है।

अलबत्ता, जैव विविधता का विज्ञान इस विचार को खारिज कर देता है कि मिश्रित वन प्रणाली को आसानी से पुनर्निर्मित किया जा सकता है। इसमें पारिस्थितिक पुनरुद्धार अहम भूमिका निभाता है, वैसे ही जैसे कि समय निभाता है। कई राज्य कह चुके हैं कि नए जंगल लगाने के लिए उनके पास ज़मीन ही नहीं है। इसी वजह से अतीत में क्षतिपूर्ति वनीकरण कोश प्रबंधन एवं योजना प्राधिकरण (कैम्पा) की राशि का एक बड़ा हिस्सा वन विभाग के लिए वाहनों की खरीदी या फिर भवनों की मरम्मत पर खर्च किया गया।

अगर क्षतिपूर्ति वनीकरण कहीं किया भी गया तो रेलवे लाइनों व राजमार्गों के दोनों ओर या ऐसी ही अन्य जगहों पर किया गया। यहां पौधे लगाए गए, लेकिन उनकी जीवित रहने की दर काफी खराब रही। यकीनन, वे जैव-विविधता वाले जंगल तो कदापि नहीं बन पाए।

नए और कृत्रिम जंगलों का विकास करने से बेहतर है कि वन विभाग कैम्पा में एकत्र धनराशि का इस्तेमाल मौजूदा वन भूमि को बहाल करने और खरीदने में करें। निश्चित रूप से यह भी विवादास्पद है। ये निर्णय राजनीति के बजाय पारिस्थितिक आधार पर और सुरक्षा के कई उपायों के साथ लेने होंगे। इस तरह के सुदृढ़ीकरण में वन कॉरिडोर (दो टाइगर रिजर्व के बीच बहुत ही संकीर्ण संपर्क मार्ग) और पर्यावरण की दृष्टि से संवेदनशील क्षेत्रों (जैसे नदीतट या सागर-संगम) को शामिल किया जा सकता है।

यह बिल सुझाता है: "धनराशि का इस्तेमाल कृत्रिम पुनरुत्पादन (वृक्षारोपण), प्राकृतिक पुनरुत्पादन में सहयोग करने, वन प्रबंधन, वन संरक्षण, ढांचागत सुविधाओं के विकास, वन्यजीवों के सरंक्षण और प्रबंधन, काष्ठ व अन्य वनोपज-बचत के उपायों में किया जाना चाहिए।" इस तरह की गतिविधियों के कई मायने हो सकते हैं।

'ढांचागत सुविधाओं का विकास' और 'काष्ठ की आपूर्ति' जैसे प्रावधान बड़े ही भ्रामक हैं। विकास के समान ढांचागत सुविधाओं का अर्थ पुनःस्थापना भी हो सकता है और विध्वंस भी। उदाहरण के लिए, श्री जावडेकर ने 'विकास' के लिए जंगलों को निजी कंपनियों के हवाले करने का सुझाव दिया है जो वहां लकड़ी के लिए पेड़ों की कटाई का काम करेंगी और साथ ही जंगलों के नवीनीकरण का आव्हान भी किया है। यह पहली बार है कि जंगलों को निजी हाथों में सौंपने की बात कही जा रही है, जिन्हें अब तक पारंपरिक रूप से सरकार ही नियंत्रित करते आई है। इसी तरह, ढांचागत सुविधाओं का मतलब वाचटॉवर्स और वन रक्षकों के लिए जल शुद्धिकरण संयंत्र लगाने से भी हो सकता है और प्रशासनिक और गैर-बजट कार्यों में पैसे की बर्बादी से भी।

भारतीय राष्ट्रीय राजमार्ग प्राधिकरण जैसी उपयोगकर्ता एजेंसियों का सुझाव है कि कैम्पा फंड की राशि का इस्तेमाल जंगलों से गुज़रने वाले रास्तों पर जंगली जानवरों के लिए अंडरपास और बायपास बनाने में किया जाए ताकि वाहनों की चपेट में आने से होने वाली उनकी मौतों को कम किया जा सके। अन्य एजेंसियां भी इसी तरह की मांग कर सकती हैं। यहीं पर कैम्पा फंड के मूल मकसद को याद रखा जाना चाहिए। उन्हीं ढांचागत सुविधाओं के विकास में इस पैसे का इस्तेमाल किया जाना उचित रहेगा जो जंगलों और वन्यजीवों के लिए हालात बदतर न बनाएं। किस तरह की ढांचागत सुविधाओं पर कैम्पा राशि का पैसा खर्च किया जाना चाहिए, इसके लिए वन्यजीव प्रभाव आकलन का प्रावधान ज़रूर किया जाना चाहिए।

केवल वन ही नहीं

जंगलों के अलावा भी ऐसे कई महत्वपूर्ण इकोसिस्टम हैं जिन पर ध्यान देने और धनराशि की ज़रूरत है। इनमें समुद्र क्षेत्र, पक्षियों के प्राकृतवास, नदी व समुद्र तटीय क्षेत्र और ऊंचाई पर स्थित घास के मैदान शामिल हैं। कैम्पा फंड में जितनी धनराशि एकत्र की गई है, वह हमें प्रकृति के संरक्षण के लिए 'हस्तक्षेप-मुक्त क्षेत्रों' के बारे में फिर से सोचने और उन्हें निर्मित करने का एक गंभीर अवसर मुहैया करवाती है।

कैम्पा फंड की इस राशि से 'हस्तक्षेप-मुक्त क्षेत्रों' का विकास राज्यों की सीमाओं के आर-पार जाकर भी किया जा सकता है। यहां पश्चिमी घाट का उदाहरण लिया जा सकता है जिसका प्रशासन अलग-अलग राज्यों द्वारा किया जाता है। कैम्पा फंड की राशि का इस्तेमाल वन्यजीव, नमभूमि और वनों के संरक्षण की योजनाओं के साथ-साथ जनसमुदाय को क्षतिपूर्ति और प्रोत्साहन योजनाओं पर करके संपूर्ण पश्चिमी घाट क्षेत्र को एक इकाई के रूप में विकसित किया जा सकता है।

सिंहों को लेकर उच्चतम न्यायालय के प्रसिद्ध फैसले (सेंटर फॉर एन्वायर्मेंटल लॉस-डब्लू.डब्लू.एफ. बनाम भारतीय संघ व अन्य) में कहा गया है कि महत्वपूर्ण क्षेत्रों और प्रजातियों का संरक्षण एक सुसंगठित कार्ययोजना के ज़रिए किया जाना चाहिए। कैम्पा राशि का इस्तेमाल जोखिमग्रस्त

वन्यजीव प्रजातियों जैसे स्याहगोस (कैरकैल) या फिर उपेक्षित प्रजातियों जैसे सारस (स्टॉर्क) और डूगोंग के संरक्षण में किया जाना चाहिए।

निश्चित रूप से जंगलों को कटने से रोकने के बारे में तो सोचा भी नहीं जा रहा है। लेकिन अधिक चुनौतीपूर्ण कार्य तो कट चुके जंगलों को फिर से खड़ा करना है जिसके लिए लैंडस्केप लेवल पर पर्यावरणीय इनपुट की ज़रूरत पड़ेगी। भवन निर्माण और विफल नर्सरियों जैसे व्यर्थ के समाधानों की बजाय पर्यावरणीय समाधानों को महत्व देने का वक्त आ चुका है।

मौजूदा प्राकृतिक क्षेत्रों का संरक्षण, वनों का एक-दूसरे से संलग्नीकरण, संवेदनशील प्राकृतवासों का संरक्षण और स्थानीय हित-धारियों के लिए समुचित क्षतिपूर्ति योजनाएं ऐसे तरीके हैं जिन पर आगे बढ़ा जाना चाहिए। अन्यथा हम केवल बड़ी-बड़ी बातें ही करते रह जाएंगे और समस्या बढ़ती चली जाएगी। ***(स्रोत फीचर्स)***